पाठ्यक्रम - ५

५ अ जीवों की अवस्था विशेष - गतियाँ

गति का स्वरूप -

गति नाम कर्म के उदय से संसारी जीव जिस अवस्था विशेष को प्राप्त करते हैं उसे गति कहते हैं। मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ आदि इस प्रकार की अनुभूति जिस कर्म का फल है वह गतिनाम कर्म है।

गति के भेद -

गतियाँ चार होती है - नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देवगति।

नरक गति -

हिंसादि पाप कर्मों के फलस्वरूप दु:ख भोगने हेतु जीव की प्राप्त अवस्था विशेष नरक गति है। इस गति में रहने वाले नारकी एक क्षण के लिए भी सुख प्राप्त नहीं करते, निरन्तर क्षेत्र जनित, शारीरिक, मानसिक और असुरकृत दु:खों को यथावसर अपनी पर्याय के अन्तसमय पर्यन्त भोगते रहते हैं।

नरक गति को प्राप्त जीव रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों में बनें ८४ लाख बिलों में रहते हैं। जिसमें ८२,२५,००० बिल अत्यधिक उष्ण (गरम) एवं १,७५,००० बिल अत्यधिक शीत (ठंडी) प्रकृति वाले होते हैं।

तिर्यञ्च गति -

मायाचार रूप परिणामों से उपार्जित पाप तथा हिंसादि पाप के फलों को भोगने हेतु प्राप्त जीव की अवस्था विशेष तिर्यञ्च गति कहलाती है।

तिर्यञ्च गति में एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीव होते हैं अर्थात पत्थर, पानी, हवा, अग्नि तथा पेड़ - पौधे इत्यादि सभी एकेन्द्रिय जीव तिर्यञ्च गति के हैं। इस गति में जीवों के पास प्रतिकार करने की क्षमता का अभाव होने पर उन्हे अनेक प्रकार के सर्दी, गर्मी, भूख - प्यास आदि के कष्टों को सहन करना पड़ता है तिर्यञ्चों के दु:खों को करोड़ों जिह्वा के द्वारा भी कहना शक्य नहीं है।

मनुष्य गति -

व्रत रहित जीव के सरल परिणाम, कम आरंभ परिग्रह से उत्पन्न शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त जीव की अवस्था विशेष मनुष्य गति कहलाती है।

इस गति में पुरुषार्थ की मुख्यता रहती है यह गति जंक्शन के समान है, जीव यहाँ से सभी गतियों में जा सकता है तथा कर्म काट कर मोक्ष भी जा सकता हैं। मनुष्य गति मिलना अन्य गतियों की अपेक्षा दुर्लभ है। देव भी मनुष्य बनने के लिए तरसते हैं।

''अविकल्पी है वह
दृढ़-संकल्पी मानव
अर्थहीन जल्पन
जिसे रुचता नहीं
थोड़ा सा भी

देवगति -

मोक्ष प्राप्ति के योग्य पुरुषार्थ की कमी होने पर देव - पूजा, दान व्रतादि से उत्पन्न विशेष पुण्य फलों को भोगने हेतु प्राप्त जीव की अवस्था विशेष देव गति है। अणिमादि आठ गुणों से नित्य क्रीड़ा करते रहते हैं, और जिनका प्रकाशमान, अत्यन्त सुंदर, धातु - उपधातु से रहित दिव्य शरीर है वे देव कहे जाते हैं।

इस गति में सुख की बहुलता रहती है, भूख-प्यास आदि की बाधा अत्यल्प होती है। सबकुछ भोगोपभोग सामग्री पूर्व

पानी यदि रंगीन मटमैला है तो उसके अन्दर क्या पड़ा हुआ है? दिखाई नहीं देता और यदि पानी साफ-सुथरा भी हो किन्तु हिल रहा है, तरंगायित हो तब भी अन्दर क्या है? दिखाई नहीं देता अत: अन्दर झाँकने के लिए पानी का रंग और तरंग रहित होना जरूरी है। ठीक इसी प्रकार रंग (मोह) और तरंग (योग) के अभाव में ही अंतरंग (आत्मतत्त्व) का दर्शन होता है।

पुण्य के उदय से स्वयमेव मिल जाती है किसी प्रकार की मेहनत/परिश्रम नहीं करनी पड़ती। पाँच इन्द्रियों के विषयों के योग्य भोग सामग्री पर्याप्त होती है किन्तु आयु पूर्ण होने पर यह सब वैभव छूट जाता है।

जीवों की गति-अगति -

नरक गति के जीव मरणकर मनुष्य व तिर्यञ्च गति में ही जन्म लेते हैं देव गति व नरकगति में नहीं। इसी प्रकार देवगति के जीव भी मरणकर मनुष्य व तिर्यञ्च गति में ही जन्म लेते हैं अन्य गतियों में नहीं। विशेषता इतनी है कि देव मरणकर पृथ्वी कायिक, जल कायिक और वनस्पति कायिक एकेन्द्रिय पर्याय में भी जन्म ले सकते हैं। किन्तु नारकी नहीं। नारकी नियम से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याय में ही जन्म लेता है।

तिर्यञ्च व मनुष्य गति के जीव चारों गतियों में जन्म ले सकते हैं विशेषता इतनी है एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीव मरणकर मनुष्य व तिर्यञ्च इन दो गतियों में ही जन्म ले सकते हैं देव गति व नरक गति में नहीं जा सकते। एकेन्द्रिय वायुकायिक एवं अग्निकायिक जीव मरणकर तिर्यञ्च गति में ही जन्म ले सकते हैं अन्य गतियों में नहीं। मनुष्य गति का जीव ही कर्मों का पूरी तरह क्षय कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है अन्य गति के जीव नहीं।

गृहस्थ के योग्य ''षट्-कर्म''

१. असि कर्म - तलवार, तीर, कमान, बंदूक, तोप, भाला आदि के द्वारा प्रजा की रक्षा करने का कार्य असि कर्म कहलाता है। असि कर्म करने वाले के मन में जीवों की रक्षा का उद्देश्य होने से यह कर्म निन्द्य नहीं माना जाता है। श्री ऋषभदेव, श्री शान्तिनाथ, श्री रामचन्द्र आदि असिकर्म करते थे। सैनिक, सुरक्षा बल, पुलिस आदि का कार्य भी असिकर्म कहा जा सकता है।

2. मसि कर्म - द्रव्य अर्थात् रुपए-पैसे की आमदनी खर्च आदि के लेखन का कार्य अर्थात् मुनीमी करना, मसि कर्म कहलाता है। सी.ए., सेल्स टेक्स, इन्कमटेक्स के वकील मसि कर्म वाले माने जा सकते है।

3. कृषि कर्म - हल, कुलिश, दन्ताल आदि कृषि उपकरणों के उपयोग की विधि को जानकर, कृषि कार्य करना कृषि कर्म कहलाता है। यद्यपि कृषि कार्य में त्रस जीवों की हिंसा होती है तदपि कृषक के मन में सभी जीवों के पेट भरे रहें, सभी सुखी रहें ऐसी सद्भावना होने से कृषि कार्य को निन्द्य नहीं माना। अपितु कृषि को उत्तम कार्य कहा गया है। आचार्यश्री शान्तिसागर जी, आचार्यश्री विद्यासागर जी के गृहस्थाश्रम में कृषि कार्य ही मुख्यता से किया जाता था।

4. शिल्प कर्म - धोवी, नाई, लुहार, कुम्हार, सुनार आदि अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण, हथियार आदि बनाते हैं उनके इस कर्म को शिल्प कर्म कहते हैं। मकान बनाना, महल बनाना, पुल बनाना, मशीन, यंत्र आदि बनाना भी शिल्प कर्म है।

5. सेवा अथवा विद्या कर्म - लेखन, गणित, चित्रादि पुरुष की बहत्तर कलाओं को विद्याकर्म कहते हैं। लेखक, कवि, पत्रकार, टाइप राइटर आदि का कार्य विद्या कर्म है इसी प्रकार से शिक्षक, प्रशासनिक सेवा आदि का कार्य भी सेवा कर्म माना जाता है।

6. वाणिज्य कर्म - चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ, घी, तेल, धान्यादि, कपास, वस्त्र, हीरे, मोती, सोना-चांदी इत्यादि अनेक प्रकार के द्रव्यों का संग्रह कर उन्हें बेचना ''वाणिज्य कर्म'' कहलाता है। इसमें सभी प्रकार का लेन-देन रूप व्यापार सम्मिलित होता है।

कुछ क्रूर व्यापार (खर कर्म) ग्रन्थों में कहे गए है ये कर्म प्राणियों को दु:ख देने वाले होने से त्यागने योग्य है। अर्थात दयाभाव रखने वाले जैन श्रावकों को यह कार्य नहीं करना चाहिए। जैसे - ईंट के, चूने के भट्टे लगवाना, गोबर गैस प्लान्ट लगवाना, सेप्टिक टैंक बनवाना, हीटर आदि अग्नि उत्पादक यंत्रों का निर्माण करना, पटाखे, बम बारुद की चीजें बनाना एवं बेचना, कीट नाशक दवाएँ जहर आदि बेचना, वन में पत्ते आदि जलाने का ठेका लेना, बारुद द्वारा पहाड़ों को तुड़वाना, दास-दासियों का व्यापार, गर्भपात की दवाई तथा खून मांस से उत्पन्न दवाइयाँ बेचना, लाख, शहद, शराब, हाथीदांत, नशीले पदार्थ, मक्खन आदि का व्यापार, बैल आदि पशुओं के नाक-कान आदि छेदने का व्यापार, चमड़े की वस्तुओं का व्यापार। इसके अलावा कुछ छुद्र कर्म भी माने है जिन्हें श्रावक न करे जैसे, जूते-चप्पल का व्यापार, बालों के कटिंग की दुकान (ब्यूटी पार्लर), हिंसक प्राणियों (कुत्ते बिल्ली आदि) का पालन-पोषण करना, इनको बेचना।

श्रद्धा हमारी भाषा

श्रद्धा हमारी भाषा, निष्ठा हमारा नारा।
गुरुदेव की शरण में, भव का मिले किनारा।।
हम गुरु के शिष्य ऐसे, जैसे दिये में बाती।
जलते रहेंगे हर पल, चाहे हो तूफां पानी।।
गुरुवर हमारे ऐसे, जैसे श्री वीर भगवन।
श्री कुन्दकुन्द स्वामी, जैसा पवित्र जीवन।।
चरणों का स्पर्श पाकर, हो जाती माटी चंदन।
पारस हैं आप गुरुवर, हमको बना दो कुन्दन।।
दुखियों के दुःख हरने, हरदम खड़े रहेंगे।
हर आँच में जलेंगे, कर्मों से हम लड़ेंगे।।
शुद्धोपयोगी गुरुवर, बस एक भावना है।
बन जाएँ आप-जैसे, कुछ और चाह न है।।

इष्ट प्रार्थना

हमारे कष्ट मिट जाए, नहीं यह भावना स्वामी।
डरे न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी।।१।।
हमारा भार घट जाए, नहीं यह भावना स्वामी।
किसी पर भार न हों हम, यही है भावना स्वामी।।२।।
फले आशा सभी मन की, नहीं यह भावना स्वामी।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी।।३।।
बढ़े धन-सम्पदा भारी, नहीं यह भावना स्वामी।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी।।४।।
दुःखों में साथ दे कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
बने सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी।।५।।
दुःखी हों दुष्ट जन सारे, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी दुर्जन बने सज्जन, यही है भावना स्वामी।।६।।
मनोरंजन हमारा हो, नहीं यह भावना स्वामी।
मनोभंजन हमारा हो, यही है भावना स्वामी।।७।।
रहे सुख-शान्ति जीवन में, नहीं यह भावना स्वामी।
न जीवन में असंयम हो, यही है भावना स्वामी।।८।।
फले फूले नहीं कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी पर प्रेम हो उर में, यही है भावना स्वामी।।९।।
दुःखों में आपको ध्यायें, नहीं यह भावना स्वामी।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी।।१०।।

जब दिमाग कमजोर होता है, परिस्थितियाँ समस्या बन जाती हैं,
जब दिमाग स्थिर होता है परिस्थितियाँ चुनौती बन जाती हैं,
जब दिमाग मजबूत होता है परिस्थितियाँ अवसर बन जाती हैं।

अपनी भावना

जिनवर हमारे नेता, जिनवाणी सच्ची माता।
गुरुदेव ही हमारे सन्मार्ग के प्रदाता।।१।।
अरहंत मेरे मस्तक, आगम हों मेरे चक्षु।
साधु हों मम हृदय में, बन पाएँ हम मुमुक्षु।।२।।
श्रुतदेव गुरु भक्ति , त्रय रत्न की हो शक्ति।
अध्यात्म की हो युक्ति, मंजिल मिलेगी मुक्ति।।३।।
गुरुदेव के बोल लगते, ज्यों कुन्दकुन्द वाणी।
लख उनकी वीर चर्या, तिरे लाखों भव्य प्राणी।।४।।
कर्त्तव्य निष्ठ जीवन, उपकारी हो ये तन-मन।
श्रद्धा सहित हो चिंतन, बने कर्म मुक्त चेतन।।५।।
साधर्मी सब हमारे, बचपन हो या जवानी।
मुक्ति का राज पाने, भव रोग को नशाएँ।।६।।

पाठशाला गीत

उठे सबके कदम तरा रम् पम् पम्, कभी ऐसे गीत गाया करो।
कभी हँसी कभी गम तरा रम् पम् पम्, हँसो और हँसाया करो।
मेरे अच्छे-अच्छे दादा मेरी प्यारी प्यारी दादी
कहानी रोज सुनाया करो।
कभी मैना कभी सुन्दरी, कभी राधा कभी सीता
कभी मुनिवर की सुनाया करो ।।१।।

उठे सब के ....
मेरे अच्छे-अच्छे पापा, मेरी प्यारी-प्यारी मम्मी
कभी चौका लगाया करो।
कभी मुनि, कभी आर्यिका, कभी एलक कभी क्षुल्लक ।
कभी दोनों पड़गाया करो ।।२।।

उठे सबके ....
मेरे अच्छे-अच्छे भैया, मेरी प्यारी-प्यारी बहिना
पाठशाला रोज आया करो ।
कभी भाग कभी छहढाला, कभी सूत्र कभी पाठ।
कभी दोनों पढ़ आया करो ।।३।।

उठे सबके ....
मेरे अच्छे-अच्छे चाचा, मेरी प्यारी-प्यारी चाची
कभी तीरथ कर आया करो।
कभी माँगी,कभी तुँगी, कभी ऊन कभी पावा
कभी शिखरजी कराया करो ।।४।।

उठे सबके ....
मेरे अच्छे-अच्छे भैया, मेरी प्यारी-प्यारी भाभी
कभी मंदिर जी जाया करो
कभी दर्शन, कभी अभिषेक, कभी पूजन कभी स्वाध्याय
कभी दोनों कर आया करो ।।५।।
उठे सबके कदम तरा रम् पम् पम्, कभी ऐसे गीत गाया करो।

पाठ्यक्रम - ५

५ ब तीर्थङ्कर बनाने वाली भावना-सोलहकारण

सोलहकारण भावना

तीर्थङ्कर नामक महान् पुण्य प्रकृति के बंध में कारणभूत जो सोलह भावनाएँ होती हैं, उन्हें सोलहकारण भावना कहा जाता है।

1. दर्शन विशुद्धि
2. विनय सम्पन्नता
3. शील-व्रतादि का निरतिचार पालन
4. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग
5. अभीक्ष्ण संवेग
6. शक्तितस्त्याग
7. शक्तितस्तप
8. साधु समाधि
9. वैयावृत्त्य
10. अर्हत् भक्ति
11. आचार्य भक्ति
12. बहुश्रुत भक्ति
13. प्रवचन भक्ति
14. आवश्यक अपरिहाणि
15. मार्ग प्रभावना
16. प्रवचन वात्सल्य

वातानुकूलता हो या न हो
बातानुकूलता हो या न हो
सुख या दुःख के लाभ में भी
भला छुपा हुआ रहता है,
देखने से दिखता है समता की आँखों से,
लाभ शब्द ही स्वयं
विलोम रूप से कह रहा है-
ला.....भ भ.....ला

1. दर्शन विशुद्धि - यह सोलहकारण भावना में प्रधान है। इसके बिना शेष 15 भावनाएँ निरर्थक हैं। सम्यग्दर्शन का अत्यन्त निर्मल व दृढ़ हो जाना ही दर्शनविशुद्धि है।

2. विनय सम्पन्नता - मोक्ष के साधन भूत सम्यक् ज्ञानादिक में तथा उनके साधक गुरु आदिकों में अपनी योग्य रीति से सत्कार, आदर आदि करना तथा कषाय की निवृत्ति करना विनय सम्पन्नता है।

3. शील-व्रतादि का निरतिचार पालन - अहिंसा आदिक व्रत हैं और इनके पालन करने के लिए क्रोधादिक का त्याग करना शील है। इन दोनों के पालन में निर्दोष प्रवृत्ति करना शीलव्रतेषु अनतिचार भावना है।

4. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग - जीवादि पदार्थ रूप स्वतत्त्व विषयक सम्यग्ज्ञान में निरन्तर लगे रहना, निरन्तर ज्ञान का उपयोग करना ही अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है।

5. अभीक्ष्ण संवेग - संसार के दुःखों से नित्य डरते रहना तथा धर्म, धर्म के फल में जो हर्ष होता है, वह अभीक्ष्ण संवेग है।

6. शक्तितस्त्याग - शक्ति की सीमा को पार न करना और साथ ही अपनी शक्ति को नहीं छिपाना इसे यथाशक्ति कहते हैं और इस शक्ति के अनुरूप त्याग करना ही शक्तितस्त्याग कहा जाता है।

7. शक्तितस्तप - शक्ति को न छिपाकर मोक्षमार्ग के अनुकूल शरीर को क्लेश-कष्ट देना शक्तितस्तप है।

8. साधु समाधि - समाधि का अर्थ मरण है। साधु का अर्थ श्रेष्ठ-अच्छा। अतः श्रेष्ठ-आदर्श मृत्यु को साधु समाधि कहते हैं। हर्ष विषाद से परे आत्म सत्ता की सतत् अनुभूति ही सच्ची समाधि है।

9. वैयावृत्त्य - गुणों में अनुराग पूर्वक संयमी पुरुषों के खेद को दूर करना, पाँव दबाना तथा और भी निर्दोष विधि से उनका कष्ट दूर करना वैयावृत्य है।

10. - 11.अर्हत् भक्ति और आचार्य भक्ति - अर्हत् अर्थात् जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है तथा जो अतिशय पूजा के योग्य हैं। आचार्य जो स्वयं पंचाचार का पालन करते हैं व शिष्यों को पालन करवाते हैं अर्थात् ऐसे अर्हत् एवं आचार्य की बिना किसी इच्छा, अपेक्षा के भक्ति स्तुति गुणगान करना अर्हत् व आचार्य भक्ति है।

12. बहुश्रुत भक्ति - बहुश्रुत का तात्पर्य उपाध्याय परमेष्ठी से है। इनकी पूजा, उपासना या अर्चना करना बहुश्रुत भक्ति कहलाती है।

13. प्रवचन भक्ति - तीर्थङ्कर केवलियों ने अज्ञात और अदृष्ट का अनुभव प्राप्त किया, अतः उनके जो भी वचन खिर गये

वे सरस्वती बन गए, श्रुत बन गए। ऐसे श्रुत के प्रति अनुराग प्रीति होना ही प्रवचन भक्ति है।

14. आवश्यक अपरिहाणि – श्रावक व साधु को अपने उपयोग की रक्षा के लिए नित्य ही छह क्रियाएँ करनी आवश्यक होती हैं, उन आवश्यकों को यथाकाल करना आवश्यक अपरिहाणि है।

15. मार्ग प्रभावना – अहिंसा मार्ग की प्रभावना ही मार्ग प्रभावना है।

16. प्रवचन वात्सल्य – प्रवचन वात्सल्य का अर्थ है साधर्मियों के प्रति करुणा भाव जैसे – गाय बछड़े पर स्नेह करती है। इसी प्रकार साधर्मियों पर स्नेह रखना, साधर्मियों को देखकर उल्लास बढ़ आना प्रवचन वात्सल्य है।

श्रावकों के द्वारा प्रतिदिन करने योग्य- षट् आवश्यक

१. देव पूजा – जल, चन्दनादि अष्ट द्रव्य से वीतरागी देव, अरिहन्तादि पञ्च परमेष्ठियों की आराधना करना, उनका गुणगान करना 'देव-पूजा' आवश्यक है। प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन आत्मविशुद्धि के साधनभूत जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिए।

२. गुरुपास्ति – जिन लिंग को धारण करने वाले निर्ग्रन्थ मुनि, आर्यिका, एलक, छुल्लक, छुल्लिका आदि व्रतियों की अपनी शक्ति के अनुसार सेवा, वैयावृत्त्य, पूजन, गुणगान करना गुरुपास्ति आवश्यक कहलाता है।

३. स्वाध्याय – आलस्य को त्याग कर जिनवाणी का अध्ययन करना 'स्वाध्याय' आवश्यक है। पाप से बचने के लिए, धर्म मार्ग में समीचीन प्रवृत्ति करने के लिए श्रावक को प्रतिदिन स्वाध्याय करना ही चाहिए। स्वाध्याय हेतु प्रारम्भ में प्रथमानुयोग के ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए पश्चात् क्षयोपशम के अनुसार आदरपूर्वक गुरुओं के सान्निध्य में शेष अनुयोगों का स्वाध्याय करना चाहिए।

४. संयम – समीचीन रूप से इन्द्रियों को वश में करना तथा त्रस एवं स्थावर जीवों का घात नहीं करना 'संयम' आवश्यक कहलाता है। संयम जीवन में गाड़ी के ब्रेक के समान आवश्यक है।

५. तप – अनशनादि बारह प्रकार के तपों का यथाशक्ति अनुष्ठान करना 'तप' आवश्यक है। अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्वों के दिनों में उपवास अथवा एकासन करना, रसों का त्याग कर भोजन करना, भक्तामर, णमोकार, सोलह कारण आदि के व्रतों का उत्तम, मध्यम, जघन्य रीति से पालना, सीमित समय के लिए गृह का, भोगोपभोग सामग्री का त्याग कर निर्जन स्थान, तीर्थ क्षेत्र आदि स्थानों पर निवास करना इत्यादि ''तप आवश्यक'' कहलाता है।

६. दान – अपने कमाये हुए धन के द्वारा अतिथियों के लिए योग्य वस्तुओं का देना 'दान' आवश्यक है। यह दान पाप को नष्ट करने वाला पुण्य प्रदाता एवं परम्परा से निर्वाण का कारण है।

संस्मरण – एक दिन मैंने आचार्य गुरुवर से पूछा कि- हे गुरुवर! आजकल कुछ लोग अपने आप को सम्यग्दृष्टि एवं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती मानते हैं। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को शुद्धोपयोग होता है ऐसा भी मानते हैं यह क्या उचित है? तब आचार्य श्री जी ने हँसते हुए कहा कि- यह तो आगम विरुद्ध बात हुई ऐसे लोगों को चतुर्थ गुणस्थानवर्ती नहीं बल्कि चतुर गुणस्थानवर्ती मानो। यह है आचार्य महाराज का दृष्टिकोण सामने वाले की चतुराई भी समझ गए और उसे बता भी दिया, लेकिन उसकी निंदा नहीं की बस यही दृष्टिकोण हम सभी धर्मात्माओं का होना चाहिए।

छोटे-छोटे शिष्य हैं पर बड़े होशियार,
विद्यासागर गुरुवर तेरा संघ है विशाल॥
मात्र पिच्छी कमंडल, रखे निज हाथ,
गाड़ी-घोड़ा-पैसा आदि नहीं रखते साथ।
जला रहे गाँव-गाँव धर्म की मशाल॥ विद्यासागर....
सारे भारत में हैं फैले गुरुवर तेरे शिष्य,
कर रहे निज-पर के ये उज्ज्वल भविष्य।
जैन धर्म रक्षण करने बने है ये ढाल॥ विद्यासागर....
ज्ञान सागर गुरुने दिया तुम्हें वरदान,
दीक्षा-शिक्षा देकर तुम को किया बलवान।
किया उत्तम मुनि संघ गुरुको ख्याल॥ विद्यासागर ....

५ स सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्, जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिल, ज्ञानप्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः, पूजाद्भुतं तद्भवैः,
सङ्गीतस्तुतिमङ्गलैः प्रसरतां, मे सुप्रभातोत्सवः ॥१ ॥

अर्थ : (**जिनपतेः**) जिनेन्द्र भगवान् के (**यत्स्वर्गावतरोत्सवे**) जो स्वर्ग से गर्भ में आने के समय किए गए उत्सव में (**यत् जन्माभिषेकोत्सवे**) जो जन्माभिषेक के समय किये गये उत्सव में (**यत् दीक्षाग्रहणोत्सवे**) जो दीक्षा ग्रहण के समय किए गए उत्सव में (**यत् अखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे**) जो केवलज्ञान प्रकट होने के समय किए गए उत्सव में (**यत् निर्वाणगमोत्सवे**) तथा जो मोक्ष प्राप्ति के समय किए गए उत्सव में (**अद्भुतं पूजा अभवत्**) आश्चर्यकारी पूजा हुई थी (**तद्भवैः**) उसमें होने वाले (**सङ्गीतस्तुति-मङ्गलैः**) गाने, बजाने, नाचने वा गुणानुवादरूप मंगलों के द्वारा (**मे सुप्रभातोत्सवः**) मेरा सुप्रभात का उत्सव (**प्रसरतां**) विस्तार को प्राप्त हो।

श्रीमन् नतामर किरीट मणिप्रभाभि,
रालीढपाद युग दुर्द्धर कर्मदूर।
श्रीनाभिनन्दन! जिनाजित! शम्भवाख्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥२ ॥

अर्थ : (**श्रीमन्नतामरकिरीटमणि-प्रभाभिः**) श्रीमान् नम्रीभूत देवों के मुकुट-मणियों की कान्ति से (**आलीढपादयुग!**) व्याप्त दोनों चरण वाले (**दुर्धरकर्मदूर!**) दुर्धर कर्मों से दूर (**श्रीनाभिनन्दन!**) हे श्री नाभिराज के पुत्र आदिनाथ ! (**जिनाजित!**) हे इन्द्रिय विजयी अजितनाथ जिनेन्द्र और (**शम्भवाख्य**) जिनेन्द्र हे संभव नाम वाले जिन! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (अस्तु) हो।

छत्रत्रय प्रचल चामर वीज्यमान,
देवाभिनन्दनमुने! सुमते! जिनेन्द्र!
पद्मप्रभा रुणमणि द्युतिभासुराङ्ग।
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥३ ॥

अर्थ : (**छत्रत्रय-प्रचल-चामर-वीज्यमान**) तीन छत्र और ढुरते हुए चञ्चल चँवरों वाले (**देव! अभिनंदनमुने!**) हे देवाधिदेव अभिनंदन मुनीन्द्र! (**सुमते जिनेन्द्र !**) हे सुमतिनाथ जिनेन्द्र भगवान्! तथा (**अरुण-मणि-द्युति-भासुराङ्ग!**) पद्मराग मणि की लाल कान्ति के समान चमकदार है शरीर जिनका ऐसे (**पद्मप्रभ!**) हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**अस्तु**) हो।

अर्हन्! सुपार्श्व! कदलीदलवर्ण गात्र,
प्रालेयतारगिरि मौक्तिक वर्णगौर।
चन्द्रप्रभ! स्फटिक पाण्डुर पुष्पदन्त!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥४ ॥

अर्थ : (**कदली-दल-वर्ण-गात्र!**) केले के पत्ते के समान हरे रंग के शरीर वाले (**सुपार्श्व! अर्हन्!**) हे सुपार्श्वनाथ! अर्हन्! (**प्रालेय-तार-गिरि-मौक्तिक-वर्ण-गौर**) हिमगिरि रजतगिरि और मोती के समान सफेद रंग वाले (**चन्द्रप्रभ!**) हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! (**स्फटिक -पाण्डुर-पुष्पदन्त!**) स्फटिक के समान निर्मल सफेद रङ्ग वाले हे पुष्पदन्त जिनेन्द्र! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**अस्तु**) हो।

सन्तप्त काञ्चनरुचे जिनशीतलाख्य,
श्रेयान्विनष्ट दुरिताष्ट कलंक पंक।
बंधूक- बंधुररुचे जिनवासुपूज्य,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥५ ॥

अर्थ : (**सन्तप्त-काञ्चनरुचे!**) तपाये हुए स्वर्ण के समान कान्ति के धारक (**जिनशीतलाख्य!**) हे इन्द्रियविजयी शीतलनाथ नामक जिनेन्द्र! (**विनष्ट-दुरिताष्ट-कलङ्क-पङ्क !**) नष्ट किया है पापरूप आठ प्रकार के कर्म-कलङ्क रूपी कीचड़ को जिन्होंने ऐसे (**श्रेयान्!**) हे श्रेयोनाथ जिनेन्द्र ! (**बन्धूक-बन्धुररुचे!**) तथा बन्धूक पुष्प/दुपहरी के फूल के समान लाल कान्ति वाले ऐसे (**जिन वासुपूज्य!**) हे इन्द्रियविजयी वासुपूज्य जिनेन्द्र! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**अस्तु**) हो।

उद्दण्ड- दर्पकरिपो विमलामलाङ्ग,
स्थेमन् ननन्तजिदनन्त सुखाम्बुराशे।
दुष्कर्मकल्मष- विवर्जित- धर्मनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥६ ॥

अर्थ : (**उद्दण्ड-दर्पक-रिपो!**) उद्दण्ड/अतिमानी कामदेव के शत्रु अर्थात् कामविजयी (**विमलामलाङ्ग!**) निर्मल शरीर के धारक हे विमलनाथ भगवन्! (**अनन्त-सुखाम्बुराशे!**) अनन्तसुख के समुद्र (**स्थेमन्ननन्तजित्!**) स्थिर/धैर्यशाली ऐसे हे अनन्तजित् भगवन्! (**दुष्कर्मकल्मषविवर्जित-धर्मनाथ!**) दुष्टकर्मरूपी

कालुषता से रहित ऐसे हे धर्मनाथ जिनेन्द्र! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**अस्तु**) हो।

देवामरीकुसुम- सन्निभ- शान्तिनाथ,
कुन्थो! दयागुण विभूषण भूषिताङ्ग।
देवाधिदेव भगवन् नरतीर्थनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥७॥

अर्थ : (**अमरी-कुसुमसन्निभ!**) अमरी नामक वृक्ष के फूल के समान पीतवर्ण वाले (**देव! शान्तिनाथ!**) हे देवाधिदेव! शान्तिनाथ भगवन्! (**दयागुण-विभूषण-भूषिताङ्ग!**) दयागुणरूपी भूषण से विभूषित है शरीर जिनका ऐसे (**कुन्थो!**) हे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र! (**तीर्थनाथ!**) आगम व रत्नत्रय धर्मरूप तीर्थ के स्वामी (**देवाधिदेव!**) देवों के देव (**भगवन् अर!**) हे भगवन् अरनाथ! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**सततं**) हमेशा (**अस्तु**) हो।

यन्मोह मल्लमद- भञ्जनमल्लिनाथ,
क्षेमङ्करा- वितथशासन- सुव्रताख्य।
सत्सम्पदा प्रशमितो नमि नामधेय,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥८॥

अर्थ : (**यत्**) जो (**मोह-मल्ल-मद-भञ्जन-मल्लिनाथ!**) मोहरूपी मिल्ल के मद का नाश करने वाले ऐसे हे मल्लिनाथ भगवन्! (**क्षेमङ्करा-वितथ-शासन-सुव्रताख्य!**) कल्याणकारी सत्य-शासन है जिनका ऐसे हे मुनिसुव्रत नाम वाले भगवन्! (**सत्संपदा**) श्रेष्ठ सम्पत्ति से (**प्रशमितः**) परमशान्त अवस्था को प्राप्त (**नमिनामधेय**) हे नमिनाथ नामक तीर्थङ्कर! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**सततं**) हमेशा (**अस्तु**) हो।

तापिच्छगुच्छ- रुचिरोज्ज्वल- नेमिनाथ,
घोरोपसर्ग- विजयिन् जिनपार्श्वनाथ।
स्याद्वाद सूक्ति मणिदर्पण वर्द्धमान,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥९॥

अर्थ : (**तापिच्छगुच्छ-रुचिरोज्ज्वल-नेमिनाथ!**) तमालवृक्षों के समूह के समान सुन्दर/उज्ज्वल कान्ति के धारक हे नेमिनाथ भगवन्! (**घोरोपसर्ग-विजयिन्**) भयंकर उपसर्ग को जीतने वाले (**जिन! पार्श्वनाथ!**) हे इन्द्रियविजयी पार्श्वनाथ भगवन्! तथा (**स्याद्वाद-सूक्ति-मणि-दर्पण!**) स्याद्वादसिद्धान्तरूपी मणिदर्पणस्वरूप (**वर्धमान!**) हे वर्द्धमान जिनेन्द्र! (**त्वद्-ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**सततं**) हमेशा (**अस्तु**) हो।

प्रालेयनील हरितारुण पीतभासं,
यन्मूर्तिमव्यय सुखावसथं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥१०॥

अर्थ : (**अव्ययं**) अविनाशी (**सुखावसथं**) सुख के स्थान (**सप्ततिशत**) एक सौ सत्तर (**जिनवल्लभानां**) जिनेन्द्र तीर्थङ्करों के (**यन्मूर्तिम्**) जिस शरीर को (**मुनीन्द्राः**) मुनिराज (**प्रालेय-नील-हरितारुण-पीत-भासं**) बर्फ के समान सफेद, नीले, हरे, लाल एवं पीली कांति वाले (**ध्यायन्ति**) ध्यान करते हैं ऐसे हे भगवन् (**त्वद्-ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**सततं**) हमेशा (**अस्तु**) हो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, मांगल्यं परिकीर्तितम्।
चतुर्विंशति तीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने॥११॥

अर्थ : (**दिने दिन**) प्रत्येक दिन (**चतुर्विंशतितीर्थानां**) चौबीस तीर्थङ्करों का स्मरण (**सुप्रभातं**) अच्छा प्रातःकाल हो (**सुप्रभातं**) वह प्रातःकाल (**सुनक्षत्रं**) उत्तम नक्षत्ररूप (**माङ्गल्यं**) मङ्गल स्वरूप (**परिकीर्तितम्**) कहा गया है।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने दिने॥१२॥

अर्थ : सभी (**देवता**) अर्हन्त देव (**ऋषयः**) मुनिजन और (**सिद्धाः**) सिद्ध भगवान (**दिने दिने**) प्रत्येक दिन (**सुप्रभातं**) सुप्रभात रूप हैं तथा (**सुप्रभातं**) वह सुप्रभात (**सुनक्षत्रं**) उत्तम नक्षत्ररूप तथा (**श्रेयः**) कल्याणकारी (**प्रत्यभिनन्दितम्**) माना गया है।

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः!
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्व सुखावहम्॥१३॥

अर्थ : (**येन**) जिन्होंने (**भव्यसत्त्वसुखावहम्**) भव्यजीवों को सुख देने वाले (**तीर्थं प्रवर्तितं**) धर्मतीर्थ को चलाया (**तव एकस्य**) आप अद्वितीय/प्रधान (**महात्मनः वृषभस्य**) महान् आत्मा वृषभनाथ भगवान का स्मरण (**सुप्रभातं**) उत्तम प्रातःकाल हो।

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्।
अज्ञानतिमिराधानां, नित्यमस्तमितो रविः॥१४॥

अर्थ : (**नित्यम्**) हमेशा (**स्तमितः रविः**) अस्त हो गया है ज्ञानरूपी सूर्य जिनका ऐसे (**अज्ञानतिमिरान्धानां**) अज्ञानरूपी

अन्धकार से अन्धे मनुष्यों की (**ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्**) आँखों को ज्ञान से खोलने वाले (**जिनेन्द्राणां**) जिनेन्द्र भगवन्तों का स्मरण (**सुप्रभातं**) सुप्रभात हो।

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवीदग्धाः, शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥१५॥

अर्थ : (**कमललोचनः**) कमल के समान नेत्र वाले (**वीरः**) महावीर प्रभु (**येन**) जिन्होंने (**शुक्लध्यानोग्रवह्निना**) शुक्लध्यानरूपी तेज/तीव्र अग्नि के द्वारा (**कर्माटवी दग्धा**) कर्मरूपी जंगल को जला दिया (**जिनेन्द्रस्य**) ऐसे उन जिनेन्द्र भगवान का (**सुप्रभातं**) सुप्रभात हो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमङ्गलम्।
त्रैलोक्यहितकर्तृणां, जिनानामेव शासनम् ॥१६॥

अर्थ : (**त्रैलोक्यहितकर्तृणां**) तीन लोक का हित करने वाले (**जिनानाम्**) जिनेन्द्र भगवान का (**शासनम् एव**) शासन ही (**सुप्रभातं**) शुभ प्रभातरूप (**सुनक्षत्रं**) शुभ नक्षत्ररूप (**सुकल्याणं**) शुभ कल्याणरूप और (**सुमंगलम्**) शुभ मङ्गलरूप है।

॥ इति सुप्रभात-स्तोत्रम् ॥

● **असंतोष की A B C D से मिलेगा-A= अटेक, B=बी.पी., C=कोलेस्ट्राल, कैंसर, D=डायबिटीज, डिप्रेशन'**

महासती अत्तीमव्वे

चालुक्य वंश के महादण्डनायक वीर नागदेव की पत्नी थी। एक बार नागदेव युद्ध करते हुए शत्रु को खदेड़ते हुए उसे गोदावरी के उस पार तक ले गये थे। पीछे से गोदावरी में भयंकर बाढ़ आ गयी। डर यह था कि शत्रु को यदि बाढ़ का पता लग गया तो वह नागदेव को पीछे खदेड़ देगा और सब नदी में डूबकर मरण को प्राप्त हो जाएँगे। यह भी समाचार आया कि नागदेव जीत तो गये हैं पर अर्द्धमृत से हो गए हैं। सती अत्तीमव्वे उनको अपने खेमे में लाना चाहती थी। परन्तु नदी के उफान के कारण मजबूर थी। वह अचानक तेजी से निकली और नदी के किनारे खड़े होकर कहने लगी कि यदि मैं पक्की जिनभक्त और अखण्ड पतिव्रता होऊँ तो हे गोदावरी नदी! मैं तुझे आज्ञा देती हूँ कि तेरा प्रवाह उतने समय के लिए रुक जाए जब तक हमारे परिवारी जन इस पार नहीं आ जाते।

तुरंत ही नदी का प्रवाह घट गया और स्थिर हो गया। वह गई और अपने पति को ले तो आई पर बचा न सकी। शेष जीवन उसने उदासीन धर्मात्मा श्राविका के रूप में घर में बिताया। उसने स्वर्ण एवं रत्नों की 1500 जिन प्रतिमाएँ बनवाकर विभिन्न मंदिरों में विराजमान कीं। महाकवि पोन्न के शांतिपुराण की कन्नड़ भाषा में 1000 प्रतियाँ लिखाकर शास्त्र भण्डारों में वितरित कीं। निरंतर दान देने के कारण उसे 'दान चिंतामणि' कहा जाता था। उपर्युक्त कथा शिलालेख से प्रमाणित है।

सारांश : जिनभक्ति एवं उत्तम दान से हर कार्य आसान हो जाता है। अतः भक्ति एवं दान हमेशा शक्ति अनुसार करते रहना चाहिये।

भजन

नाम जब से तुम्हारा वरण कर लिया।
दर्श ने दर्द का परिहरण कर लिया ।।
एक ठोकर लगा दो तो तर जाएँगे।
दूर क्यों तुमने अपना चरण कर लिया।।
सत्य अहिंसा की तुम एक तस्वीर हो।
इस नए दौर के आप महावीर हो।।
आप पर गर्व करती है माँ भारती।
खुद हिमालय करे आपकी आरती।।
मुक्ति मारग की ओर चरण कर लिया।
दर्श ने दर्द का परिहरण कर लिया।।

रोज परीक्षा

क्षमता को नापने का नाम परीक्षा है, रोज-रोज परीक्षा प्रतिभा में निखार लाती है जो अपनी पढ़ाई के प्रति सजग है उसे परीक्षा भार नहीं उत्सव का दिन लगता है विद्यार्थी जीवन परीक्षाओं से भरा हुआ है।

जब विद्याधर स्कूल में पढ़ते थे, छुट्टी के १५ मिनट पहले शिक्षक बोलते थे अपने-अपने बस्ते बाँध लें और खड़े हो जाएँ, फिर मौखिक परीक्षा होती थी यह प्रतिदिन का कार्य था।

विद्याधर ने मुनि दीक्षा स्वीकार कर आचार्य विद्यासागर बन बचपन के अभ्यास को कायम बनाए रखे हैं और बाईस परीषह की रोज परीक्षा दे रहे हैं एवं पास होते जा रहे हैं। अपने शिष्यों को भी परीक्षा में बिठा रखे हैं और कह रखा है नम्बर पूरे आना चाहिए।